# भारतीय समाज के संदर्भ में बालकों की लैंगिक समाजीकरण प्रक्रिया का अध्ययन

कृष्ण कुमारी *

*यह शोध नारीवादी परिप्रेक्ष्य के आधार पर लड़कों के लैंगिक समाजीकरण का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है जिसमें द्वितीयक स्रोत के लेखों के विश्लेषण के आधार पर लड़कों का जन्म से लेकर किशोरावस्था तक के लैंगिक समाजीकरण का अध्ययन किया गया है। जेंडर के मुद्दे के आवश्यक सिद्धान्त व पारिभाषिक शब्दों को समझा जा सके, इसके लिए संबंधित सिद्धांतों का संक्षिप्त आधार प्रस्तुत किया गया है। शोध में पितृसत्ता की व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले प्रत्येक बालक की जन्म से लेकर किशोरावस्था तक होने वाले मुख्य लैंगिक समाजीकृत अनुभवों जिसमें जन्म, लोरियाँ, शुरुआती पारिवारिक लगाव, सामाजिक खुलेपन के अनुभव, जीवन के लक्ष्य निर्धारित करने वाले आयाम से संबंधित अनुभव, शिक्षा, यौन, सांस्कृतिक विकास, इंद्रिय विकास, पुरुषत्व के गुणों के विकास का वर्णन किया गया है। लैंगिक विकास को व्यापक रूप से समझने के लिए कई स्थानों पर लड़का व लड़की को प्राप्त होने वाले अनुभवों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। शोध में समकालीन नारीवादियों व शिक्षाविद्, जैसे — निवेदिता मेनन, उषा नय्यर, कृष्ण कुमार, लीला दुबे आदि के लैंगिक समाजीकरण संबंधित लेखों को उद्धृत करते हुए उनका विश्लेषण किया गया है। संक्षेप में, यह शोध नारीवाद व लैंगिक समाजीकरण से संबंधित समकालीन राजनीति व बालकों के लैंगिक समाजीकरण का अध्ययन प्रस्तुत करता है।*

जब भी कोई लड़का किसी लड़की के साथ अमर्यादित व्यवहार करता है तो मन में हमेशा यह बात आती है कि उसकी क्या मानसिकता होगी व ऐसी मानसिकता उसने कहाँ से पाई होगी? हमेशा लेखिका के मन में यह प्रश्न उठता रहा है कि क्या लड़का होने के कारण यह मानसिकता जन्मजात है या फिर इसके कोई और कारण हैं? फिर यह भी विचार आता है कि अगर जन्म से ही ऐसी मानसिकता होती तो शायद सभी पुरुषों में भी ऐसी ही मानसिकता होनी चाहिए थी, परंतु ऐसा नहीं है।

इन्हीं सब विचारों से जूझते हुए लेखिका ने इस विषय पर शोध करने का निश्चय किया। शोध के माध्यम से यह जानने का प्रयत्न किया कि लड़कों का लैंगिक समाजीकरण कैसे होता है? इस शोध के लिए आँकड़े द्वितीयक स्रोत से लिए गए हैं, अर्थात् इस विषय पर उपलब्ध शोधों व लेखों के

**शोधार्थी*, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, नयी दिल्ली – 110 068

आधार पर बालकों की लैंगिक समाजीकरण प्रक्रिया को समझा गया है।

## शोध के उद्देश्य

शोध के उद्देश्य इस प्रकार हैं —

1. बालकों की लैंगिक समाजीकरण प्रक्रिया को समझना।
2. बालक व बालिका में लैंगिक समाजीकरण संबंधित अनुभवों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

लेख को आगे बढ़ाने से पूर्व हमें यौन (सेक्स) व जेंडर में विभेद जानना ज़रूरी है। एन. ओकले (1972) सेक्स व जेंडर में विभेद करते हुए कहती हैं, "यौन एक जैविकीय अवधारणा है, उसका आधार शरीर है जबकि जेंडर सामाजिक और सांस्कृतिक सृजन है।" इसका तात्पर्य यह है कि सेक्स पूर्णत: शरीर से संबंधित है, जो सार्वभौमिक सत्य है; अर्थात् जो अंतर शरीर की संरचना के आधार पर पुरुष व महिला में होते हैं, उसे सेक्स के अंदर शामिल किया जाता है, परंतु शारीरिक संरचना में व्यक्तित्व, विचार, आदतें आदि नहीं बदल सकते। यदि विचारों के स्तर पर भी कोई अंतर हमारे समाज में महिला व पुरुष के बीच दृष्टिगोचर होता है तो यह शारीरिक अंतर की देन नहीं हो सकता। शारीरिक अंतर मूर्त होते हैं, दृश्य सक्षम होते हैं, परंतु हमारे समाज में स्त्री-पुरुष के बीच के अंतर शारीरिक से कहीं ज़्यादा हैं। मूल्यों, विश्वासों, रीति-रिवाजों के आधार पर भी अंतर विद्यमान है और इनका आधार शारीरिक न होकर सामाजिक है। शरीर के आधार पर स्त्री-पुरुष के मूल्यों में अंतर नहीं आता।

लैंगिक समाजीकरण के बारे में प्रसिद्ध नारीवादी निवेदिता मेनन (2001) भी यही समझाती हैं कि सेक्स जैविक अर्थ की तरफ इशारा करता है, जबकि जेंडर उसके सांस्कृतिक अर्थ से संबंधित है व जेंडर का स्त्री-पुरुष की जैविक संरचना से कोई सह-संबंध नहीं है। जेंडर बच्चों के लालन-पालन की क्रिया है। निवेदिता मेनन जैविक निर्धारणवाद (बायोलॉजिकल डिटर्मनिज़्म) अर्थात् स्त्री-पुरुष के बीच सांस्कृतिक अंतर को जैविक या कुदरती मानकर अपरिवर्तनीय व जायज़ मानने की अवधारणा को भी खारिज करती हैं। जन्म के समय बच्चे का लिंग निर्धारित होता है, परंतु जेंडर नहीं। जेंडर निर्धारण अलग-अलग समुदाय में समाजीकरण प्रक्रिया द्वारा अलग-अलग होता है। बच्चे का लिंग निर्धारण प्रसव पूर्व भ्रूण में स्वत: होता है, परंतु जेंडर निर्धारण स्वत: नहीं होता। इसमें वातावरण की प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष भागीदारी होती है। यही कारण है कि अलग-अलग समाज में जेंडर अवधारणा में फ़र्क होता है। यदि जेंडर भूमिका भी स्वत: होती तो पूरे विश्व में जेंडर भूमिका समान होती, परंतु ऐसा नहीं है, जेंडर भूमिका में काल, स्थान एवं वातावरण के अनुसार अंतर पाया जाता है।

जेंडर समाजीकृत होता है। छोटा बच्चा जब जन्म लेता है तो वह इन सब सामाजिक परम्पराओं से अनजान होता है, परन्तु धीरे-धीरे वह अपने समाज में पुरुष की अवधारणा या महिला की अवधारणा को आत्मसात् कर लेता है। इस आत्मसात् करने की प्रक्रिया को लैंगिक समाजीकरण कहते हैं।

स्थूल नज़रों से देखने पर यह शरीर पर आधारित लगती है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता

है कि यह सोची-समझी प्रक्रिया के अंतर्गत होता है जिसे पितृसत्ता प्रथा कह सकते हैं। पुरुष को समाज में उच्च स्थान दिया जाता है व महिला अधीनस्थ की भूमिका में होती है। समाज की प्रत्येक महिला व पुरुष को इस व्यवस्था के अंतर्गत ढालने के लिए समाज द्वारा लैंगिक समाजीकरण किया जाता है। गर्दा लर्नर (1986) पितृसत्ता की व्याख्या करते हुए समझाती हैं कि पितृसत्ता का अर्थ परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरुष के वर्चस्व की अभिव्यक्ति और संस्थागतकरण तथा सामान्य रूप से महिलाओं पर पुरुषों के सामाजिक वर्चस्व का विस्तार है। इसका अभिप्राय है कि पुरुषों का समाज के सभी महत्वपूर्ण सत्ता प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण रहता है और महिलाएँ ऐसी सत्ता तक पहुँच से वंचित रहती हैं।

यह प्रक्रिया भी जानना बहुत रुचिकर होगा कि कैसे कोई बच्चा सामाजिक मूल्य से अनभिज्ञ होकर जन्म लेता है, परंतु जब वयस्क होता है तो पितृसत्ता निर्धारित व्यवहार करने लगता है। उसे कौन इस तरह व्यवहार करना सिखाता है? वह किस तरह पितृसत्ता से संबंधित पुरुषत्व को धारण करता है? इस लेख में हम यही जानने का प्रयास करेंगे कि कैसे एक लड़का पितृसत्ता की व्यवस्था को बनाए रखने की मंशा रखते हुए पितृसत्ता की व्यवस्थानुसार स्वयं को ढालता है। वे कौन-कौन सी संस्थाएँ हैं तथा कौन-कौन से तरीके हैं जिससे लड़का समझ जाता है कि उसे बड़े होकर किस तरह पुरुषत्वानुसार व्यवहार करना है। समाजीकरण किस तरह व्यक्ति की सोच को बढ़ाता है। इस शोध में लड़कों के जन्म से लेकर किशोरावस्था तक प्राप्त होने वाले उन अनुभवों की चर्चा की गई है।

वर्तमान समय में नारीवादी विचारधारा की आबो-हवा है। इसी कारण कई नारीवादियों ने लड़कियों के समाजीकरण की जाँच पड़ताल की है कि कैसे लड़कियाँ स्त्रियोचित व्यवहार करना सीख जाती हैं, परंतु लड़के किस प्रकार पुरुषत्व ग्रहण करते हैं? यह अभी भी अबूझ है। यदि वर्तमान समाज को जेंडर संतुलित बनाना है तो केवल लड़कियों की समाजीकरण प्रक्रिया का अध्ययन करके उसमें आवश्यक जागरूकता व परिवर्तन लाना न सिर्फ़ अधूरी कोशिश होगी, बल्कि समाज में असंतोष भी पैदा करेगी। यदि लड़के परम्परागत भूमिका में होंगे व लड़कियाँ परिवर्तन को आत्मसात् करेंगी तो समाज में टकराव उत्पन्न हो सकता है। इसलिए लड़कियों के लैंगिक समाजीकरण प्रक्रिया के साथ-साथ लड़कों के लैंगिक समाजीकरण को जानना व उसमें आवश्यक परिवर्तन लाना भी जेंडर संतुलित समाज की स्थापना के लिए आवश्यक है। इस लेख में लड़कों की लैंगिक समाजीकरण प्रक्रिया का अध्ययन द्वितीयक स्रोतों के लेखों के विश्लेषण के आधार पर किया गया है।

पीटरबर्ग (1967) के सिद्धांत को समाजीकरण सिद्धान्त का आधार मानते हुए प्राथमिक समाजीकरण (परिवार) द्वारा लड़कों के लैंगिक समाजीकरण का अध्ययन किया गया तथा लड़कों का लैंगिक समाजीकरण समझने के लिए कई स्थानों पर लड़कियों के समाजीकरण प्रक्रिया से तुलना भी की गई है।

**परिवार** — सामान्यत: माना जाता है कि बच्चे का प्राथमिक समाजीकरण परिवार व आस-पास के वातावरण में होता है। बच्चे के लिए सम्पूर्ण

दुनिया उसका घर ही है तथा घर के बड़ों के माध्यम से ही बच्चा दुनिया को जानता है (कुमार, 2014)। प्राथमिक समाजीकरण में परिवार के सदस्य बच्चों के समक्ष अनुभव को अपने सन्दर्भों, मान्यताओं, विश्वास, दृष्टिकोण आदि के आधार पर संशोधित करके प्रस्तुत करते हैं (बर्ग, 1967)।

लैंगिक समाजीकरण लड़के के जन्म से ही प्रारंभ हो जाता है। चोमस्की (2002) मानते हैं कि बच्चा एक सक्रिय सामाजिक प्राणी है। शुरुआती परवरिश का प्रभाव उसके भावी जीवन पर पड़ता है। इसी सन्दर्भ में बोल्बी (1969) के अध्ययन से भी पता चलता है कि लगाव के सन्दर्भ में बच्चों के बचपन के अनुभवों का असर बच्चों की किशोरावस्था में आत्मविश्वास और अभिव्यक्ति पर पड़ता है। जन्म से ही लड़का व लड़की के अनुभवों में भिन्नता प्रारंभ हो जाती है। बेटे के जन्म पर खुशी-खुशी समारोह आयोजित किए जाते हैं, जबकि बेटी के जन्म पर दुःख की अभिव्यक्ति के साथ-साथ भाग्य को कोसा जाता है। शुरुआती परवरिश में यही भावनाएँ उनके बाद के जीवन पर असर डालती हैं। बचपन में लगाव व सुरक्षा की भावना बाद के जीवन में आत्मविश्वास व अभिव्यक्ति भर देती है। परवरिश के दौरान लड़का समझने लगता है कि उसका स्थान लड़की से कहीं ऊपर है और इस समझ को लड़का आत्मसात् कर लेता है व इस विश्वास के अनुरूप व्यवहार करना प्रारंभ कर देता है।

बच्चे की शुरुआती परवरिश में लोरी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लोरी के माध्यम से माँ बच्चे को प्यार करती है, सम्प्रेषण करती है, कल्पनाएँ करवाती है। लोरी सुनकर बच्चा संगीत का आनंद लेते हुए लोरी के अर्थ की कल्पनाएँ करता है।

एक अध्ययन में यह पाया गया कि 400 में से केवल तीन लोरियाँ लड़कियों के लिए थीं (नय्यर, 1997)। यहाँ पर लड़कों की लोरी का एक उदाहरण दिया गया है जिसमें लोरी के माध्यम से जेंडर असमानता को बढ़ावा मिल रहा है व लड़कों में पितृसत्ता अनुरूप गुण विकसित करने के लिए आवश्यक लैंगिक समाजीकरण किया जा रहा है।

*मत रो, मेरे सुन्दर बच्चे,*
*मैं तुम्हारे लिए दुल्हनियाँ लाऊँगी।*
*उसका रंग सोने जैसा होगा,*
*उसके होंठ लाल कली होंगे,*
*मैं बड़े-बड़े कनस्तरों में घी भरूँगी,*
*मैं बढ़िया चावल पकाऊँगी,*
*मेरा बेटा पेट भरकर खाएगा,*
*उसकी पत्नी उसकी खाली थाली चाटेगी।*
(लीला दुबे, 2004)

उपरोक्त लोरी की चर्चा से दो बातें सामने आती हैं। पहली, बच्चों की परवरिश के प्रति लड़के को ही ध्यान में रखा जाता है। दूसरी, जब बच्चा रोता है तो हम उसकी पसंद की वस्तु लाकर देते हैं, ताकि उसका ध्यान उस वस्तु पर रहे तथा वह न रोए। उपरोक्त लोरी में रोने पर दुल्हनियाँ लाने की बात स्त्री को पुरुष की नज़र में वस्तु की तरह प्रस्तुत करती है। लोरी की अगली पंक्तियाँ उस वस्तु रूपी स्त्री को रंग और होंठ आदि के सन्दर्भ में देखने व मूल्यांकन करने को प्रेरित करती हैं तथा अंत की पंक्तियाँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा वर्णित स्त्री अधीनता का वर्णन करती

हैं। सामान्य लड़का इस तरह की लोरियों को सुनकर मन में स्त्री की पहचान, उसकी अस्मिता, वजूद के सन्दर्भ में विचार नहीं बना सकता, बल्कि वह स्त्री को उपभोग की वस्तु मानने का आदि हो जाएगा तथा रंग, रूप, सुन्दरता के आधार पर उसका मूल्यांकन भी करेगा व उसे स्वयं के अधीन रखने की बात भी स्वीकार करेगा। इन सभी प्रकार के अनुभवों से गुज़रते हुए बच्चा अपने अन्दर पितृसत्ता अनुसार अपेक्षित पुरुष गुण को आत्मसात् कर लेता है।

दो-तीन वर्ष की आयु तक बच्चों को लड़का-लड़की का ज्ञान हो जाता है। उनको लिंग विशेष भूमिका आधारित नामों से अलंकृत किया जाता है। अलग-अलग तरह के वस्त्र दिए जाते हैं। लड़कियों को खेलने के लिए गुड़िया, रसोई के बर्तन रूपी खिलौने दिए जाते हैं और लड़कों को बन्दूक, कार और हवाई जहाज़ से खेलने को प्रोत्साहित किया जाता है। इस प्रकार, इसी आयु से ही नर-नारी के दायरे निश्चित हो जाते हैं। इस तरह की गतिविधियों से लड़के और लड़कियों की रुचियाँ खास दिशा में धाराबद्ध होने लगती हैं। जिससे आगे चलकर उनकी योग्यता, रवैये, आकांक्षाओं और सपनों का विकास भी अलग-अलग दिशाओं में होने लगता है।

बचपन में लड़का घर में बड़ों को निक्कर पहने घूमते देखता है। यह सब देखकर उसको यह बात समझ आ जाती है कि लड़कों का शरीर दिखना ज़्यादा चिंता की बात नहीं है। यह सामान्य तथा स्वीकार्य है। इस तरह लड़कों में शरीर या अंग के प्रति बेपरवाह, शर्मिंदा न महसूस होना जैसे गुण विकसित होने लगते हैं तथा घर व सार्वजनिक स्थान पर वे ऐसा हाव-भाव सीखने लगते हैं। लड़के इन सबको समाजीकरण द्वारा आत्मसात् करते हैं। वहीं लड़कियों को अपने तन को ढककर रखना सिखाया जाता है तथा यह भी सिखाया जाता है कि यदि पुरुष को इस अवस्था में देखें तो वहाँ से चली जाएँ। यदि जाना संभव न हो तो कम-से-कम नज़र झुका लें या उस तरफ़ से नज़र फेर लें। मूत्र त्याग, खुजली होना, गर्मी लगना, ये सब दैहिक क्रियाएँ हैं जिन्हें पुरुष या लड़का दैहिक रूप से घर या सार्वजनिक स्थान पर करता है। यह उसकी हर वक्त आरामदायक स्थिति में रहने को इंगित करता है। दैहिक क्रियाओं की आवश्यकता अगर किसी लड़की को सार्वजनिक स्थान पर हो तो उसके पास सहने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है और इस तरह लड़की कष्टदायक स्थिति को सहने की आदत विकसित कर लेती है और लड़का सार्वजनिक स्थान पर भी आरामदायक स्थिति में रहने की आदत विकसित कर लेता है।

कृष्ण कुमार (2014) लड़कों के समाजीकरण पर प्रकाश डालते हुए बताते हैं कि किस प्रकार लड़का व लड़की के जीवन का लक्ष्य समाजीकरण द्वारा अलग हो जाता है। वे समझाते हैं कि पुरुष के जीवन में पति और पिता बनने के बाद और साथ-साथ भी बहुत कुछ होता रहता है, जो मनुष्य होने के नाते बनी रहने वाली सार्थकता की भूख को शांत करता है। यह भूख पुरुष मानस में अपनी रुचि का काम सीखते रहने और उसके कौशल प्राप्त करने की इच्छा बनाए रखती है और इस तरह उसकी व्यक्तिगत पहचान का साधन बनती है। पुरुष का जीवन कुछ अलग पहचान लिए व्यक्तित्व की तह तक खुलकर पूर्णता प्राप्त करने

का प्रयास करता है। इसके विपरीत स्त्री के जीवन में विवाह और मातृत्व का लक्ष्य ही मुख्य लक्ष्य के रूप में समाजीकरण द्वारा प्रदान किया जाता है जिसमें व्यक्तित्व पहचान का लक्ष्य गौण हो जाता है।

कृष्ण कुमार (2014) आगे व्यक्तित्व विकास में इन्द्रियों का महत्व बताते हुए लड़कों और लड़कियों में इन्द्रिय विकास की असमानता का भी ज़िक्र करते हैं। उनके अनुसार लड़का अपनी इन्द्रियों का प्रयोग अपनी मानसिक व शारीरिक स्वतंत्रता के अनुसार करता है। यदि दृष्टि की बात करें तो लड़का कहीं भी आते-जाते हुए बेरोकटोक कुछ भी देखते हुए आगे बढ़ता है। जो वस्तु उसे अधिक आकर्षक लगेगी, उसे वह रुककर भी देख सकता है। अपनी दृष्टि द्वारा दुनिया के असीम अनुभव प्राप्त करने की स्वतंत्रता उसके स्वयं के पास है। वहीं लड़की से अपेक्षा की जाती है कि वह आँखें नीची करके चले, किसी वस्तु या व्यक्ति पर अपनी आँख एकाग्र न करे और निरुद्देश्य रूप से इधर-उधर न देखे। इन्द्रियों का विकास भी लड़कियों में लड़कों के मुकाबले कम होने दिया जाता है। इन्द्रियों के विकास की मात्रा उम्र बढ़ने के साथ-साथ लड़कों के लिए बढ़ती जाती है और लड़कियों के लिए घटती जाती है। परिणामस्वरूप, लड़के व्यक्तित्व पहचान बनाने में और सक्षम हो जाते हैं। ज्ञानेन्द्रियों के सन्दर्भ में इन्हीं अंतरों के कारण लड़कों के पास सैद्धांतिक ज्ञान, जिसे वे स्कूल में सीखते हैं, के साथ-साथ वास्तविक ज्ञान भी होता है, परन्तु लड़की इस वास्तविक ज्ञान से धीरे-धीरे दूर होती जाती है। इसका प्रभाव आगे जाकर दोनों की पेशेगत ज़िन्दगी पर भी पड़ता है। जहाँ लड़के सामान्यत: अधिक सफल होते हैं व लड़कियाँ प्रतियोगिताओं में पिछड़ जाती हैं।

यदि चलने जैसी आम क्रिया की बात की जाए तो इसका भी सांस्कृतिक पक्ष लड़का व लड़की के लिए भिन्न है। लड़का जब चलने की क्रिया करता है तो यह सामान्य क्रिया समझी जाती है। उसे अपनी चाल पर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं होती और न इस बात का ज़िक्र करने की कि उसकी चाल स्वीकृत है या नहीं। सामान्यत: अपनी चाल पर लड़कों का ध्यान नहीं जाता, बल्कि चलते समय चलकर उन्हें जिस उद्देश्य की पूर्ति करनी है, उस पर होता है, परन्तु लड़कियाँ किशोरावस्था तक पहुँचते-पहुँचते यह सीख चुकी होती हैं कि अपनी चाल को दूसरों, खासकर पुरुषों की निगाह से देखकर चलना चाहिए।

इस तरह के अनुभवों से गुज़री लड़की चाल, सुन्दरता और व्यवहार के नज़रिये से 'स्वीकार्य लड़की' की अवधारणा बना लेती है। वह दूसरों की नज़र से स्वयं की चाल, सुन्दरता और व्यवहार के आधार पर मूल्यांकन करना सीख जाती है। लड़कों के लिए शारीरिक सन्दर्भ खासकर चाल, उठना-बैठना, व्यवहार आदि के आधार पर दूसरे उनके बारे में क्या सोचते हैं, ज्यादा महत्व नहीं रखता। इसलिए दूसरों के प्रति स्वयं का परिप्रेक्ष्य बनाने के कौशल में वह शारीरिक सन्दर्भ को आधार नहीं बनाते।

लड़कियों के लिए किशोरावस्था का काल अपनी सुन्दरता के प्रति सचेत व माँ, पत्नी और विवाह के लिए स्वयं को तैयार करने का होता है। परन्तु लड़कों में किशोरावस्था का प्रारंभ लड़कियों से एकदम भिन्न होता है। उनके लिए यह काल उनके

पुरुष बनने का लक्षण प्रतीत कराता है। इस काल में उनमें यौन का सामर्थ्य विकसित हो जाता है। पुरुषत्व के तमाम गुण, जैसे — ताकत, आक्रामकता, निर्भय, प्रभुत्व, हिंसा, कठोरता और बहादुरी किशोरावस्था में चरम अवस्था पर होते हैं। हालाँकि लड़कों में इन गुणों का विकास जन्म के साथ ही परिवार या अन्य संबंधियों द्वारा प्रारंभ कर दिया जाता है।

किशोरावस्था में लड़का व लड़की को लेकर एक और अंतर है — 'गाली'। किशोर होते-होते प्राय: लड़के गालियाँ देना प्रारंभ कर देते हैं, वहीं लड़कियों को गाली देने से न सिर्फ़ बचना सिखाया जाता है बल्कि यह भी सिखाया जाता है कि जहाँ गाली का प्रयोग हो, वहाँ से चले जाना चाहिए। लड़कियाँ गाली देना तो दूर, गाली न सुनने को भी तैयार की जाती हैं। यौन आधारित गालियों का प्रयोग लड़कों की आम बोल-चाल की भाषा में सामान्य रूप से दृष्टिगोचर होता है। इस तरह गालियों का प्रयोग करना लड़कों में हिंसात्मक, आक्रामकता, यौन उत्तेजना तथा यौन गतिविधियों को बहादुरी से जोड़ने की मानसिकता को विकसित करता है। गालियों में यौन को लेकर कर्ताभाव पुरुष का होता है तथा कर्मभाव स्त्री के लिए होता है। इस तरह की भाषा शैली स्त्री को वस्तु के रूप में चिह्नित करती है तथा संभोग पर पुरुष का एकाधिकार भी निश्चित करती है। गालियाँ यौन को 'बदला लेने' के सन्दर्भ में भी मान्यता देती हैं। इसी कारण संभव है कि बलात्कार की घटनाएँ बदला लेने या नुकसान पहुँचाने के उद्देश्य से की जाती हैं।

बालिका की देह पर स्त्री होने के लक्षण उसे युवक बन रहे पुरुषों और प्रौढ़ों की दृष्टि में लाएँगे, इस आधार का हवाला देकर वयस्क अर्थात् व्यवस्थाबद्ध-समाज किशोरी के चलने-फिरने और घर से बाहर दिखने पर प्रबंध लगाता है। परन्तु कभी भी समाज पुरुष पर लड़की को न देखने का नियंत्रण, उसमें कामोत्तेजना आने पर उसे रोकने का नियंत्रण नहीं लगाता है। यह मानसिकता लड़का व लड़की की यौनिकता के प्रति समाज के दृष्टिकोण को व्यक्त करती है। व्यावहारिक समाज पुरुष की लालसा को इस रूप में स्वाभाविक ठहराता है कि उस पर नियंत्रण संभव नहीं है अर्थात् लालसा महसूस करना और उस पर काबू न रख पाना, ये दोनों ही सामान्य पुरुष होने के लक्षण हैं। इस सन्दर्भ में हमारे समाज की मानसिकता का झुकाव पुरुष के पक्ष में दिखता है। पितृसत्तात्मक समाज के यही लक्षण होते हैं। इस तरह की मानसिकता अनजाने में ही लड़कों को स्त्री शोषण, यौन अपराध जैसे अमानवीय व्यवहार को तार्किक व स्वाभाविक मानकर उन्हें ऐसे अमानवीय व्यवहार करने की स्वतंत्रता देती है। यह लालसा और कामभावना पुरुषत्व का प्रतिबिम्ब बन जाती है।

इस समाजीकरण प्रक्रिया में जो लड़के पितृसत्ता अनुरूप आवश्यक गुण, जैसे — तार्किकता, बल, बुद्धिमत्ता, आक्रामकता, प्रतियोगी प्रवृत्ति, बहादुरी, मुखरता, निर्भयता, हिंसात्मकता, स्वतंत्र व प्रभुत्वशाली आदि गुण विकसित नहीं कर पाते, समाज उन्हें लगातार ढालते रहने की प्रक्रिया करता रहता है, क्योंकि पुरुषत्व के बिना पुरुष समाज में स्वीकार्य नहीं है। वास्तव में, पुरुषों के हाथ में भी चुनाव नहीं है। उन्हें भी पितृसत्ता अनुरूप पूर्वनिश्चित ढाँचे में ढलना ही पड़ता है, नहीं तो समाज उन्हें

स्वीकार नहीं करेगा। समाज पुरुष से यही अपेक्षा करता है कि लड़के लड़कियों पर प्रभुत्व दिखाएँ और इसी अनुरूप व्यवहार करने के लिए समाज लड़को पर लगातार दबाव डालता रहता है। जिस तरह लड़की में घर न संभालने का गुण, कुरूपता, लड़ाकू, झगड़ालू आदि जैसे गुण होंगे तो उसे शादी और ससुराल का उदहारण देकर स्त्रीत्व के गुण आत्मसात् करने को बढ़ावा दिया जाता है; ठीक उसी प्रकार लड़कों को भी आक्रामक, मर्दाना, हिंसात्मक, प्रभुत्वशाली आदि बनने को समाज लगातार बढ़ावा देता रहता है। जो लड़के बहादुर नहीं होते यानी कमज़ोर होते हैं, उनका भी आक्रामक पुरुषों द्वारा शोषण किया जाता है। शोध दर्शाते हैं कि जिन लड़कों के साथ बचपन में हिंसात्मक या यौन शोषण हुआ हो वे वयस्क होने पर स्वयं हिंसात्मक व अपराधी स्वभाव के हो जाते हैं। (भसीन, 2002)। पितृसत्तात्मक समाज में लड़का व लड़की दोनों पर अपने लिंग अनुसार गुण अर्जित करने का दबाव रहता है। बेरोज़गार होना भी पुरुष के लिए गहन चिंता का विषय है। चूँकि पितृसत्ता अनुसार घर का आर्थिक व्यवस्थापक पुरुष को ही होना चाहिए और यदि पुरुष आर्थिक आमदनी नहीं कर पाता तो वह स्वयं को अपूर्ण मानता है तथा इस कारण आत्मग्लानि से भर जाता है, जो आगे अवसाद में भी परिवर्तित हो सकती है। पुरुष को समाज की स्वीकृति पाने के लिए शक्तिशाली, बहादुर, यौन रूप से सफल व स्त्रियों को अपने अधीन करने का गुण अर्जित करने की मजबूरी होती है। जो पुरुष इन पैमानों पर खरा नहीं उतर पाता, उसे समाज का विरोध और अलगाव सहन करना पड़ता है।

पुरुषत्व की धारणा लड़कों को सामान्य जीवन नहीं जीने देती। स्त्रीत्व के रूप में मान्य गुणों को लड़कों में विकसित नहीं होने दिया जाता। इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण बात यह भी है कि पुरुषत्व व स्त्रीत्व में श्रेष्ठ/हीन का सम्बन्ध है। समाज पुरुषत्व को श्रेष्ठ और स्त्रीत्व को हीन मानता है। इसी कारण, यदि लड़कियों में पुरुषत्व के गुण दिखते हैं तो यह गर्व की बात मानी जाती है, परन्तु लड़कों में स्त्रीत्व के गुण ग्लानि, शर्म, अपूर्णता और अपमान का सूचक होते हैं। पुरुषत्व में स्त्रीत्व के शोषण का कार्य भी सम्मिलित होता है। जिन पुरुषों में किसी भी कारण से पुरुषत्व के गुण, जैसे — ताकत, मज़बूती, बहादुरी आदि गुण विकसित नहीं हो पाते, उनका ताकतवर पुरुषों द्वारा शोषण किया जाता है। इस तरह समाजीकरण द्वारा जनित पुरुषत्व की धारणा पुरुषों का अमानवीकरण करती है।

## शोध का औचित्य

शोध बालकों के जेंडर समाजीकरण की समझ विकसित कराता है। यह शोध उन सभी दार्शनिक विचारों का खंडन करता है जो पितृसत्ता के अंतर्गत पुरुषत्व व नारीत्व में व्याप्त अंतर को जैविक मानकर सही ठहराते हैं, जिसे जैविक निर्धारणवाद भी कहते हैं। शोध का औचित्य इस बात से भी है कि इसमें लड़कों के लैंगिक समाजीकरण का विस्तृत वर्णन है। सामान्यतः लड़कियों के जेंडर समाजीकरण पर बहुत-से शोध उपलब्ध हैं, परंतु केवल लड़की का जेंडर समाजीकरण समाज में व्याप्त पितृसत्ता की अधूरी जानकारी देता है। जब तक लड़कों के भी जेंडर समाजीकरण को नहीं समझा जाएगा, तब तक समाज में समतामूलक मूल्यों की स्थापना नहीं की जा

सकती। जिस तरह यह जानना ज़रूरी है कि लड़कियाँ किस तरह पितृसत्ता के अंतर्गत अपना निम्न दर्जा स्वीकार करती हैं व स्वयं पर पुरुष का नियंत्रण स्वीकार करती हैं, उसी प्रकार यह भी जानना ज़रूरी है की किस तरह पितृसत्ता के अंतर्गत लड़कों को लड़कियों पर नियंत्रण करना व उनको निम्न दर्जा देना सिखाया जाता है। यह शोध इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस शोध में लड़कों के समाजीकरण का एकतरफा वर्णन नहीं है, अपितु इसमें लड़कों पर भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले दबाव व शोषण का वर्णन किया गया है। यह शोध अतिवादी नारीवादियों की भी आलोचना करता है जो लड़कियों के दोयम दर्जे का सारा ठीकरा पुरुषों पर फोड़ते हुए एक अलग समाज की कल्पना करते हैं और यह नहीं समझते कि असल में चुनाव पुरुषों के हाथ में भी नहीं है। जिस तरह लड़कियाँ दोयम दर्जा स्वीकार करने को बाध्य की जाती हैं, ठीक उसी प्रकार पुरुषों को भी बहुत छोटी उम्र में ही यह विश्वास दिला दिया जाता है कि वे नारी से ऊपर हैं व उन्हें नारी का नियंत्रण करना है। जो पुरुष ऐसा नहीं करते, समाज उन्हें भी स्वीकार नहीं करता।

## शोध का शैक्षिक महत्व

शिक्षा की दृष्टि से यह शोध बहुत ही महत्वपूर्ण है। एन.सी.एफ. 2005 व एन.सी.ई.आर.टी. पोज़ीशन पेपर 'जेंडर इश्यूज़ इन एजुकेशन', 2006 स्पष्ट रूप से शिक्षा द्वारा जेंडर से संबंधित रूढ़िवाद को समाप्त करने की अपील करता है। यह जेंडर को अंतर के रूप में न देखकर इसे एक असमानता के रूप में देखे जाने की बात करता है। पुरुषत्व व नारीत्व की पारंपरिक भूमिका को नकारते हुए इसे विवेचनात्मक दृष्टिकोण से देखने की बात करता है। इन सब मुद्दों के आधार पर यह शोध शिक्षा की दृष्टि से काफ़ी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। शोध जेंडर समाजीकरण का विस्तृत उल्लेख करता है और शिक्षा/स्कूल समाजीकरण का एक मुख्य घटक है, ऐसे में प्रत्येक उस शिक्षक व अभिभावक के लिए यह शोध महत्वपूर्ण है जो लैंगिक समाजीकरण से जुड़े हुए हैं व शिक्षा के माध्यम से असमानता रहित पुरुषत्व व नारीत्व का विकास करने के इच्छुक हैं। स्कूल केवल ज्ञान का ही स्रोत नहीं हैं, बल्कि समाजीकरण में भी मुख्य भूमिका निभाते हैं जिसमें जेंडर समाजीकरण भी शामिल है। ऐसे में स्कूलों का यह उत्तरदायित्व है कि वे आने वाली पीढ़ी में जेंडर समानता के मूल्य विकसित करें और यह सिर्फ़ लड़कियों में जेंडर समानता की चेतना से पूरा नहीं होगा, बल्कि इसमें लड़कों को भी नए जेंडर मूल्य, जो उन्हें नियंत्रक की भूमिका से निकालकर एक सहयोगी की भूमिका से लैस करें, का भी विकास करना ज़रूरी है। इसलिए यह शोध शिक्षा व लैंगिक समाजीकरण से जुड़े लोगों के लिए प्रासंगिक है व उन्हें दिशानिर्देश हेतु उचित चेतना विकसित करने योग्य भी बनाता है। भावी शिक्षकों में भी जेंडर समानता की चेतना व समतामूलक सिद्धांतों पर आधारित नवीन जेंडर दृष्टिकोण विकसित करने में यह शोध अहम भूमिका निभा सकता है।

## निष्कर्ष

इस शोध का केंद्र बिंदु बालक का लैंगिक समाजीकरण है। शोध का निष्कर्ष भी यही है कि जेंडर अवधारणा से अनजान जन्मा बालक किस

तरह सामाजिक प्रक्रिया से गुज़रता हुआ स्वयं में पुरुषत्व के गुण धारण कर लेता है। इस प्रक्रिया में वह अनजाने में अमानवीय मूल्य, जैसे — हिंसात्मकता, क्रोध, नियंत्रक आदि जिसे पितृसत्तात्मक समाज मर्दानगी कहता है, को धारण करता है। ये सारे मूल्य व्यक्ति में सामाजिक जागरूकता आने से पहले ही विश्वास, मान्यता, आदत के रूप में भर दिए जाते हैं और इस तरह ये मूल्य स्थायी हो जाते हैं। जिन बालकों में इस तरह के गुण विकसित नहीं हो पाते, पितृसत्तात्मक समाज उनकी अवहेलना करता है व इन मूल्यों को विकसित करने की लगातार कोशिश करता है। संक्षेप में, इस शोध का मूल निष्कर्ष यही है कि पितृसत्तात्मक समाज में चुनाव पुरुष के हाथ में भी नहीं है, उन्हें भी पूर्व-निर्धारित खाके में ढलना पड़ता है। यह अलग बात है कि पितृसत्तात्मक समाज ने पुरुषों को मुख्य भूमिका दी है व महिलाओं को अधीनस्थ की, परंतु चुनाव किसी के भी पास नहीं है। पुरुषत्व व नारीत्व दोनों की ही भूमिकाओं में परिवर्तन की आवश्यकता है ताकि पुरुष नियंत्रक की भूमिका को छोड़ें व महिलाएँ समर्पित होने की भूमिका को त्यागें तथा दोनों सहयोगी की भूमिका अपनाएँ।

## संदर्भ


ओकले, एन. 1972. *सेक्स, जेंडर एंड सोसाइटी*. राउत्ले. लंदन.

कुमार, कृष्ण. 2014. *चूड़ी बाज़ार में लड़की*. राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

गीता, वी. 2002. जेंडर. स्त्री, कलकत्ता.

———. 2007. जेंडर. स्त्री, कलकत्ता.

चोपड़ा, आर (संपादक). 2002. *साउथ एशियन मस्कुलिनिटी*. काली फ़ॉर वुमन, नयी दिल्ली.

चोमेस्की, नोम. 2002. *सिंटेक्टिक स्ट्रक्चर्स*. मौटन डी ग्रूटर, न्यूयॉर्क.

दुबे, लीला. 1997. *वुमेन एंड किनशिप*. विज़्टर पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

———. 2004. *लिंगभाव का मानव वैज्ञानिक अन्वेषण — प्रतिच्छेदी क्षेत्र*. वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

नय्यर, उषा. 1997. *बालिका का सकारात्मक आत्मबोध विकास*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.

बर्जर, पी.एल. और टी. लकमैन. 1967. *दि सोशल कंस्ट्रक्शन ऑफ़ रिएलिटी — ए ट्रीटाईज़ इन दि सोशयोलॉजी ऑफ़ नॉलेज*. पेंग्विन, लंदन.

बोल्बी, जॉन. 1969. *अटैचमेंट एंड लॉस, वॉल्यूम 1 अटैचमेंट*. बेसिक बुक्स, न्यूयॉर्क.

बोवुआर, सिमोन द. 2008. *स्त्री के पास खोने के लिए कुछ नहीं है*. संवाद प्रकाशन, मेंरठ.

भसीन, कमला. 1986. *नारीवाद*. जगोरी, नयी दिल्ली.

———. 2002. *भला ये जेंडर क्या है?*. जगोरी, नयी दिल्ली.

———. 2004. *मर्द, मर्दानगी और मर्दवाद*. जगोरी, नयी दिल्ली.

———. 2004. *एक्सप्लोरिंग मस्कुलिनिटी*. जगोरी, नयी दिल्ली.

———. 2010. *पितृसत्ता क्या है?* जगोरी, नयी दिल्ली.

मेनन, निवेदिता. 2001. नारीवादी विचारधारा में सेक्स/जेंडर विभेद. आर्य, मेनन और लोकनीता (संपादक). 2001. *नारीवादी राजनीति — संघर्ष एवं मुद्दे*. हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नयी दिल्ली.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *एन.सी.एफ़. 2005 नेशनल फ़ोकस ग्रुप ऑन जेंडर इश्यूज़ इन एजुकेशन*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.

———. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.

लेमर, गेर्डा. 1986. *दि क्रिएशन ऑफ़ पैट्रिआर्की*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क.